अङ्क-31 ISSN-2278-1242

प्राच्य–प्रज्ञा

(A referred journal)

शोध–पत्रिका
संस्कृत विभाग
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय

प्रधान संपादक
प्रो0 मोहम्मद शरीफ़

2018–19

विषयानुक्रमणिका

क्र0 सं0	विषय	पृष्ठ सं0
1.	महाकवि माघ के प्रकृतिचित्रणवैशिष्ट्य का विवेचन **प्रो0 मोहम्मद शरीफ**	1–09
2.	महाकवि भोज एवं उनका सरस्वती कण्ठाभरण एक विश्लेशण **प्रो0 राम सुमेर यादव**	10–20
3.	वैदिक अर्थव्यवस्था की वर्तमान प्रासंगिकता **प्रो0 शालिमा तबस्सुम**	21–26
4.	वर्तमान राजनैतिक परिवेश में कौटिलीय अर्थशास्त्र एक नैतिक चिन्तन (सप्त–प्रकृतियों के परिप्रेक्ष्य में) **डॉ0 सारिका वार्ष्णेय**	27–45
5.	वेदों में विश्वबन्धुत्त्व **डॉ0 हेमबाला**	46–51
6.	ऋग्वेद में विष्णु देवता का स्वरूप **डॉ0 ऋचा पाण्डेय**	52–59
7.	नैषधीयचरितम् में राजधर्म **डॉ0 संजय कुमार**	60–70

8. योग के मनोवैज्ञानिक चिन्तन की विश्व में उपयोगिता– 71–80

डॉ0 मारूफ उर रहमान

9. पालि साहित्य का खण्डकाव्य 'भूरिदत्त जातक'– एक अनुशीलन 81–87

डॉ0 ज़फर इफ्तेख़ार

10. पालि साहित्य का अमूल्य ग्रन्थ धम्मपद में उपदेश वचन 88–93

डॉ0 अलीविया रज़ा

11. संस्कृत रूपकों में वेश्यावृत्ति 94–102

डॉ0 जहाँ आरा

12. नैषधीयचरितम् में नीति तत्त्व 103–108

इमराना परवीन

13. कर्पूरमंजरी में लोकपरम्परा : एक अध्ययन 109–116

हुमा सिद्दिकी

14. सर्वतोमुखी शिक्षा पद्धति हेतु वैदिक शिक्षा की प्रासंगिकता – एक चिन्तन 117–126

आशू राधा

15. वैदिक वाङ्मय में सामाजिक पर्यावरण 127–132

अमरीन खानम

16. महाभारत में वर्णित वृक्षों की उपयोगिता (महत्त्व) 133–140

खुशबू भारती

17. मुद्राराक्षस में पात्र–निरूपण 141–154

पूजा

18. पार्थचरितामृतम् में वर्णित भक्तियोग 155–160

श्वेता सिंह

19. महाकवि परमानन्दशास्त्री कृत 'गन्धदूतम्' में पर्यावरणीय चिन्तन 161–166

कविता पुण्ढीर

20. लक्ष्मणसूरिकृत युद्धकाण्डचम्पू : एक समीक्षात्मक अध्ययन 167–178

प्रवेश शर्मा

21. रघुवंशम् में वैदिक देवताओं को स्वरूप 179–184

प्रभा कुमारी

नैषधीयचरितम् में राजधर्म

डॉ. संजय कुमार

संस्कृत महाकाव्य की एक वृहद् परम्परा हैं, विभिन्न व्यक्तित्त्व से आधारित होने के कारण इनमें देशकाल के अनुसार विभिन्नताएँ भी मिलती हैं। यही विभिन्नता भारतीय सांस्कृतिक परिवेश की देश–दर्शन कराती है। श्रीहर्ष द्वारा प्रणीत वाईस सर्गात्मक नैषधीयचरितम् महाकाव्य भी इसी परम्परा का सम्बाहक महाकाव्य है। इस महाकाव्य की गणना 'किरातार्जुनियम्' और शिशुपालवधम् के साथ संस्कृत महाकाव्यों की वृहद्त्रयी में होती है। इन महाकाव्यों से कल्पना, रमणीयता, चमत्कार तथा शास्त्रीय मानदण्डों के परिपाक में नैषधीयचरितम् अग्रगण्य है। इसीलिए संस्कृत मनीषियों में यह उक्ति प्रसिद्ध है– 'उदिते नैषधे काव्ये क्व माघः क्व च भारविः' अर्थात् नैषध काव्य के उदित हो जाने पर कहाँ माघ और कहाँ भारवि?

नैषधीयचरितम् महाकाव्य का मूल स्रोत महाभारत के वनपर्व में वर्णित नलोपाख्यान है। जिसमें कवि ने अपने प्रतिभा के बल पर अनेक शास्त्रीय विषयों को कान्ताशैली में प्रतिपादित किया है। वैसे दुरुहता के लिए हस महाकाव्य पर आलोचकों द्वारा आक्षेप भी लगाया जाता है लेकिन अर्थों की विपुलता से सहृदय आनन्द विभोर भी हो जाता है। कवि अपने कविता के आलोक में अनेक शास्त्रीय परम्परा का बोध कराता है। जिसमें श्रीहर्ष बहुत सफल होते भी दिखाई देते हैं। उनके द्वारा संगीत, आयुर्वेद, दर्शन, विज्ञान, ज्योतिष, व्याकरण, समाजशास्त्र एवं राजशास्त्र आदि विषयों का सहजरूप से 'नैषधीयचरितम्' महाकाव्य में वर्णन किया गया है। यह

वर्णन केवल विचित्रिता के दृष्टि से ही नहीं किया गया है बल्कि उनके महात्म्य का बोध भी कराया गया है। 'महाभारत' से सम्बन्धित होने के कारण यह राजधर्म का भलि–भांति विश्लेषण करता है क्योंकि महाभारत का मूल आधार राजधर्म ही रहा है। राजधर्म समस्त राजकीय व्यवस्थाओं के समुच्चय का नाम है। जिसमें पग–पग पर प्रजा का पालन समाहित है। एक बात मैं और स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि चाहे वह राजतन्त्र हो या प्रजातन्त्र सबमें प्रजापालन की मूल भावना ही सन्निहित है। भेदभाव से रहित न्यायपूर्वक राजकीय व्यवस्थाओं का अनुशासन ही राजधर्म है। राजधर्म सदैव न्याय के अनुशासन पर चलता है। जहाँ अपने पराये जैसे शब्दों के लिए स्थान नहीं है। प्रजा का योग–क्षेम ही सभी तन्त्रों का मूल आधार है। किसी भी तन्त्र में प्रजा के वर्ग विभाजन के आधार पर न्याय व्यवस्था की स्थापना नहीं की जा सकती है। यहां वर्ग से तात्पर्य हमारा जातिवाद, क्षेत्रवाद और सम्प्रदायवाद से ऊपर उठकर लोक हितकारी योजनाओं से है। प्रजा में इस प्रकार विभेद किसी भी राष्ट्र या समाज के लिए शुभ नहीं है। श्रीहर्ष ने एक ऐसे राजा की सृष्टि की है जो सर्वविध सम्पूर्ण पृथ्वी के पालन में संलग्न रहने वाला है। उस नल के सम्बन्ध में महाकाव्य के प्रारम्भ में ही कहा गया है–

निपीय यस्य क्षितिरक्षिणः कथां तथाद्रियन्ते न बुधास्सुधामपि।
नलस्सितच्छत्त्रितकीर्ति मण्डलस्य राशिरासीन्महसां महोज्वलः।।[1]

अर्थात् जिस पृथ्वीपालक की कथा का पान करके विद्वज्जन अमृत का भी वैसा आदर नहीं करते, ऐसा अपने श्वेत छत्र के समान यशोमण्डल से युक्त, उत्सवों से देदीप्यमान, तेजोराशि राजा नल था। यहाँ राजा नल की चार विशेषताएँ बतलाई गयी हैं– पृथ्वी पालक, निस्कलंक यश वाला, उत्सवों से देदीप्यमान और तेज राशि वाला। राजधर्म में जब सप्तांगों– राजा, मन्त्री, राज्य, सेना, कोश, दण्ड और मित्र का अध्ययन किया जाता है तो सर्वप्रथम राजा का ही नाम आता है। यहां भी कवि के द्वारा प्रथमतः राजा नल के गुणों का वर्णन किया गया है। राजा के पृथ्वी पालन से यही अभिप्राय है कि वह भेदभाव से रहित सम्पूर्ण प्रजा (पृथ्वी) का पालन करे। राजा को निस्कलंकित यश वाला होना चाहिए, राजा के उत्सव से देदीप्यमान का आशय प्रजा की प्रसन्नचित अवस्था से है। प्रसन्नचित प्रजा ही उत्सव–महोत्सव से समलंकृत होती है। तेज राशि का तात्पर्य दोषी के

दण्ड देने में राजा सहस्र तेजरुप को धारण कर लेता है। 'मनुस्मृति' में ठीक ही कहा गया है–

तस्यार्थोसर्वभूतानां गोप्तारं धर्ममात्मजम्।
ब्रह्मतेजोमयं दण्डमसृजत्पूर्वमीश्वरः।।[2]

उस राजा की कार्य सिद्धि के लिए भगवान् ने सम्पूर्ण जीवों के रक्षक, धर्मस्वरूप पुत्र, ब्रह्मा के तेजोमय दण्ड की सृष्टि की। 'याज्ञवल्क्यस्मृति' में भी राजा के स्वरूप में कहा गया है कि राज्याभिषिक्त राजा को महान् उत्साही, दानशील, कृतज्ञ, वृद्धसेवी, विनययुक्त, सत्यवादी, कुलीन, पवित्र, अविलम्ब समायोचित कार्य करने वाला, स्मृति सम्पन्न, अक्षुद्र, कोमल प्रकृति वाला, अपनी कमी को समझने वाला तथा संभालने वाला, अध्यात्मविद्या, राजनीतिकर्ता तथा त्रयीवेद विद्या में निपूण होना चाहिए।[3] श्रीहर्ष भी राजा नल के व्याज से राजा को चौदह विद्याओं से युक्त होना चाहिए, यह उपदेश दे रहे हैं–

अधीतिवोधाचरण प्रचारणैर्दशश्चतस्रः प्रणयन्नुपाधिभिः।
चतुर्दशत्वं कृतवान् कुतस्स्वयं न वेद्मि विद्यासु चतुर्दशस्वयम्।।[4]

अर्थात् राजानल ने अध्ययन, अर्थज्ञान, आचरण और प्रचार इन चार प्रकारों से क्यों चौदह विधाओं को चतुदर्षत्व ही बनाया। चौदह को चौदह रहने दिया है। यह मैं स्वयं नहीं समझ पाता। कहने का भाव यह है कि राजानल चारों वेद, षड्वेदाङ्ग, मीमांसा, न्याय, धर्मशास्त्र, पुराण, इन चौदह विद्याओं के न केवल ज्ञाता थे अपितु स्वाध्याय, आचरण और प्रचार में तत्पर रहा करते थे। 'अर्थशास्त्र' में इन चौदह के स्थान पर चार ही विद्या का उल्लेख मिलता है–

आन्वीक्षकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिश्चेति विद्याः।[5]

अर्थात् आन्वीक्षकी, त्रयी (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद) वार्ता और दण्ड नीति ये चार विद्याये हैं। नल अपने राज्य में विधिवत राजधर्म का पालन करने वाले राजा हैं। उनके शासन में अधर्म भी धर्माचारी हो गया है–

पदैश्चतुर्भिस्सुकृते स्थिरीकृते कृतेऽमुना के न तपः प्रपेदिरे।
भुवं यदेकाङ्घ्रिकनिष्ठया स्पृशन् दधावधर्मोऽपि कृशस्तपस्विताम्।।[6]

अर्थात् राजा नल के द्वारा चारों पैरों से सुकृत धर्म के निश्चल किये जाने पर कृतयुग में कौन तपस्यारत नहीं हो गये अपितु सब

तपस्यारत हो गये क्योंकि दुर्बल, अधर्म भी एक पैर पर खड़ा होकर धरती को छूता हुआ तपस्या करने लगा है। राजा नल के राज्य में सर्वत्र सत्य, अस्तेय, शम, दम के आधार पर धर्म का पालन किया जाता है। राजानल को त्रेता में उत्पन्न माना जाता है। उन्होंने अपने गुणों से त्रेता में भी पूर्ण धर्म की स्थापना करके सतयुग ला दिया। जिसमें धर्म चारों पैरों से विचरण करता है और अधर्म एक पैर पर स्थित होकर तपस्या करना लगा है। राजा का सदैव यही प्रयास होना चाहिए कि सर्वत्र धर्म की स्थापना हो। सभी लोग धर्मपूर्वक आचरण करें। प्रजा में धर्मपूर्वक आचरण करने की प्रवृत्ति तभी संभव है, जब सब प्रकार से उन्हें समृद्ध बना दिया जाय। ज्ञान और धन से समृद्ध मनुष्य ही धर्मपूर्वक आचरण कर सकता है। धर्म वस्तुतः कर्त्तव्यपालन का संकेत करता है। जहाँ कर्त्तव्य पालन की दृढ़ भावना होती है वहीं धर्म भी रहता है और समृद्धि भी। राजा नल के राज्य में प्रजा सब प्रकार से समृद्ध थी। जिसकी प्रशंसा दूसरे राज्यों में भी भी जाती थी।[7] राजधर्म में प्रजा पालन ही श्रेष्ठ है। जो राजा अपनी राजधर्म रूपी मर्यादा का परित्याग कर चुका है उसे श्रीहर्ष पृथ्वी पर रहने के योग्य नहीं मानते हैं–

न वास योग्या वस्तुधेयमीदृशस्त्वमङ्ग! यस्याः पतिरुज्झितस्थितिः।
इति प्रहाय क्षितिमाश्रिता नभः जगस्तमाचुक्रुशुरारवैः खलु।।[8]

अर्थात् ऐ राजा जिस धरती का ऐसा मर्यादा छोड़ देने वाला स्वामी है, वह धरती रहने योग्य नहीं है। इस प्रकार धरती को छोड़कर आकाश मार्ग उड़ गया पक्षी शब्द करता हुआ मानो राजा की निंदा करने लगा। मर्यादाहीन राजा के राज्य में सज्जन मनुष्य नहीं रहा करते हैं। ऐसे राजा की निन्दा मनुष्य ही नहीं बल्कि पक्षियों के द्वारा भी की जाती है। 'अर्थशास्त्र' में भी ठीक ही कहा गया है–

विद्याविनीतो राजा ही प्रजानां विनये रतः।
अनन्यां पृथिवीं भुङ्क्ते सर्वभूतहिते रतः।।[9]

अर्थात् जो विद्वान् राजा प्राणि मात्र की हितकामना में लगा रहता है और प्रजा के शासन तथा शिक्षण में तत्पर रहता है वह चिरकाल तक पृथिवी का निर्बाध शासन करता है। यही राजधर्म का मूल मन्त्र है जिस पर राज्य के अर्जन–वर्धन की संकल्पना पूर्ण होती है। इस संकल्पना में राजा के साथ–साथ मन्त्री की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। 'नैषधीयचरितम्'

महाकाव्य में मन्त्री और वैद्य के मर्यादित आचरण की प्रशंसा की गयी है। मन्त्री एवं वैद्य का अन्तःपुर में आना–जाना वर्जित नहीं था। इस सम्बन्ध में कहा गया है–

कन्यान्तः पुरबोधनाय यदधीकारान्न दोषा नृपं
द्वौ मन्त्रि प्रवरश्चतुल्यमगदङ्कारश्च तामूचतुः।
देवाकर्णय सुश्रेतेनचरकस्योक्तेन जानेऽखिलं
स्यादस्या नलदं बिना न दलने तापस्य कोऽपि क्षमः।।[10]

अर्थात् कन्या के अन्तःपुर में योग–क्षेम को जानने के लिए जिस अधिकरण से दोष नहीं है। मन्त्रिश्रेष्ठ और चिकित्सक दोनों कुण्डिनपुर के राजा भीम से एक ही बात कहते हैं। दोनों कहते हैं कि सुश्रुत और चरक के अनुसार दमयन्ती का ताप मिटाने में नल के अतिरिक्त और कोई समर्थ नहीं है। लेकिन मन्त्री के कथन का अभिप्राय इस प्रकार है– भलीभांति सुनकर (सुश्रुत) और चरों (चरक) द्वारा कथन से मैं सब जान गया हूँ कि इस दमयन्ती के संताप का शमन करने में राजानल (नलद) के अतिरिक्त कोई समर्थ नहीं है। इस प्रकार मन्त्री राजा के राजकीय परामर्श के साथ उसे पारिवारिक परामर्श भी देता था। मन्त्री ही सम्पूर्ण व्यवस्था के प्रति उत्तरदायी और अधिकारी माना जाता था। किसी प्रकार का अमर्यादित और निन्दनीय, वर्जित कार्य, अन्तःपुर में न हो यह गुरुभार भी मन्त्री पर ही रहा करता था। 'अर्थशास्त्र' में आचार्य विशालाक्ष के मत का उल्लेख करते हुए ठीक ही कहा गया है–

सहक्रीडितत्वात् परिभवन्त्येनम्।
येह्यस्यगुह्यसधर्माणस्तानमात्यान् कुर्वीत, समानशीलव्यसनत्वात्।
ते ह्यस्य मर्मज्ञभयान्नापराध्यन्तीति।[11]

अर्थात् आचार्य विशालाक्ष का कहना है कि एक साथ खेलने तथा उठने–बैठने के कारण सहपाठी अमात्य राजा का तिरस्कार कर सकते हैं इसलिए अमात्य उनको बनाना चाहिए जो गुप्तकार्यों में राजा का साथ देते रहे हों। समाजशील और समान व्यसन होने के कारण ऐसे लोग गुप्त बातों का भेद खुल जाने के भय से राजा का अपमान नहीं करते हैं। इस प्रकार मन्त्री की नियुक्ति राजा के लिए महत्त्वपूर्ण है। राजा और मन्त्री के कुशल सामंजस्य में राज्य की श्रीवृद्धि होती है। इतिहास साक्षी है जहाँ मन्त्री और राजा में परस्पर मतभेद रहा है उस राज्य का पतन हो गया। मन्त्री को

अपने राजधर्म का कभी भी परित्याग नहीं करना चाहिए। उसे सदैव राजा एवं राज्य की सुख, समृद्धि और शान्ति का उपदेश देना चाहिए। धृतराष्ट्र का मन्त्री विदुर और नन्द का मन्त्री राक्षस सदैव अपने कर्तव्य का पालन करते इसी रूप में दिखलाई पड़ते हैं। राजा अपने राज्य की भूमि सीमा की भी रक्षा करता है। राज्य सीमा की रक्षा उसके क्षत्र धारण का प्रतीक है। इसलिए राजानल के योद्धाभाव को श्रीहर्ष प्रकट करते हुए कहते हैं–

महारथस्याध्वनि चक्रवर्तिनः परानपेक्षोद्वहनाद्यशस्सितम्।
रक्षवदातांशुभिषादनीदृशां हसन्तमन्तर्बलमर्वतां रवेः।।[12]

अर्थात् महान् योद्धा, चक्रवर्ती राजा नल को मार्ग में अन्य अश्वों की अपेक्षा न करके उद्वहन के कारण प्राप्त यश से मानो शुभ्र, श्वेत और दातों की किरणों के व्याज से अन्य की अपेक्षा किये बिना अकेले ढोने में असमर्थ सूर्य के घोड़े के बल पर मन ही मन हँसते थे। तात्पर्य यह है कि सूर्य के सात घोड़े मिलकर सूर्य का उद्वहन करते हैं और राजानल का घोड़ा अकेला सूर्य सभी अधिक प्रतापी नल को ढोता है। यहां राजा के पूंछ और केसर के व्याज से चामर युगल का भी निर्देश किया गया है[13] वस्तुतः पुच्छ ओर केसर दो राजाओं के चिह्न हैं– छत्र और चामर को राजा धारण करते हैं। नल शत्रु को अपने पराक्रम से सदैव अधीन करने वाले हैं। उनके सम्बन्ध में कहा गया है–

अनल्पदग्धारिपुरानलोज्ज्वलैर्निजप्रतापैर्वलयं ज्वलद् भुवः।
प्रदक्षिणीकृत्य जयाय सृष्टया रराज नीराजनया स राजधः।।[14]

अर्थात् शत्रु राजाओं का हंता वह नल शत्रुओं की प्रभूत पुरियों को जला डालने वाले अग्नि से उज्ज्वल प्रतापपुंज द्वारा जलते–दमकते भू–वलय की प्रदक्षिणा करके विजयार्थ प्रस्तुत आरार्तिक आरती से सुशोभित हुआ। कहने का भाव यह है कि जब महाराज विजयी होकर लौटते थे तब उनकी पुरोहितादि से आरती उतारी जाती थी। राजा नल के सैन्य बल का वर्णन करते हुए कहा गया है–

यदस्य यात्रासु बलोद्धतं रजः स्फुरत्प्रतापानलधूममञ्जिम।
तदेव गत्वा पतितं सुधाम्बुधौ दधाति पङ्की भवदङ्कतां विधौ।।[15]

अर्थात् इस नल की विजयार्थ यात्राओं में सेना के द्वारा उड़ायी गयी स्फुरित होते प्रताप–रूप अग्नि के धूम सम मनोहारिणी जो धूल थी वही जाकर क्षीरसागर में गिरी और कीचड़ बनकर चन्द्रमा से कृष्ण चिह्न

हो गयी। इस प्रकार राजा नल के राज्य एवं सैन्य शक्ति के विजय पर भी पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। राज्य की सैन्य शक्ति ही वाह्य एवं आन्तरिक अनुशासन को अनुशासित करती है।

राजा के सप्ताङ्गों में कोश का भी अत्यधिक महत्त्व है। कोश ही राज्य के सुव्यवस्था का रीढ़ है। यही प्रजा के योग–क्षेम का नियामक है। महाराज नल के कोश के सम्बन्ध में कहा गया है–

जगज्जयं तेन च कोशमक्षयं प्रणीतवान् शैशवशेषवानयम्।
सखा रतीशस्य ऋतुर्यथा वनं वपुस्तथालिङ्गदथास्य यौवनम्।।[16]

अर्थात् षोडशवर्षीय इस नल ने जगत् विजय कर के अपने कोष को अक्षय बना दिया, अनन्तर जैसे रति पति काम सखा ऋतु वसंत में आता है, वैसे ही यौवन ने इसके शरीर का आलिंगन किया। राजा नल का कोष अक्षय था। नाना देशों पर आक्रमण करके नाना प्रकार की सम्पत्तियों से राजा नल अपने कोश को अपरिमित स्वरूप प्रदान किया है। राष्ट्र की समुन्नति और सुरक्षा के निमित्त जितने भी उपाय साधन बताये गये हैं उनमें कोष का प्रमुख स्थान है। अर्थ विभाग के सबसे बड़े अधिकारी को समाहर्ता कहा गया है। वह समाज के विभिन्न वर्गों पर राष्ट्र की विभिन्न वस्तुओं पर गाँवों, नगरों तथा घरों पर व्यावसायियों तथा शिल्पियों पर और भूमि पर जो राज्यांश निर्धारित है उसका वह संचय करता है। यही संचय कर कहलाता है। कर व्यवस्था किसी भी राज्य व देश की आर्थिक उन्नति का एक प्रमुख मार्ग है। इसी कर से प्राप्त धन से राजा लोककल्याणकारी योजनाओं को संचालित करता है। जिसे 'रघुवंश' महाकाव्य में उचितरूप से प्रतिपादित किया गया है–

प्रजानामेव भूत्यर्थं स ताभ्यो बलिमग्रहीत।
सहस्रगुणभुत्स्रष्टुमादत्ते हि रसं रविः।।[17]

अर्थात् जैसे सूर्य अपनी किरणों से पृथ्वी का जो जल सोखता है उसका सहस्रगुना बरसाता है। वैसे राजा दिलीप भी प्रजा से जो कर लेते थे वह सारा अपनी प्रजा की भलाई में लगा देते थे। 'याज्ञवल्क्यस्मृति' में कहा गया है कि अपने जन, कोश तथा अपने शरीर की रक्षा के लिए राजा को दुर्ग बनाना चाहिए जो रमणीय हो, पशुओं को पालने योग्य हो, साथ ही साथ आजीविका का साधन भी हो और जंगल भी हो।[18] नैषधीयचरितम्

में इस बात का उल्लेख मिलता है कि राजा का नगर ऐसा होना चाहिए जिसे शत्रु कभी भी अपने अधिकार में न कर सके–

परिखावलयच्छलेन या न परेषां ग्रहणस्य गोचरा।
फणिभाषितभाष्यफक्किका विषमां कुण्डल नामवापिता।।[19]

अर्थात् खेया मण्डप (खाई के घेरे) के व्याज से कुण्डलना (गोलाकार) में घिरी हुई अतएव शत्रुओं के अधीन न हो सकने वाली शेषावतार महामुनि पतञ्जलिकृत महाभाष्य की फाक्किका के समान थी। भाव यह है कि जनश्रुति के अनुसार वररुचि ने महाभाष्य की फक्किका को कुण्डलित कर दिया था अर्थात् दुर्गेय स्थलों पर घेरा बना दिया था जिसका अभिप्राय शेष या अन्य समझा जाता था। उसी प्रकार महाराज भीम की नगरी कुण्डिनपुरी को कुण्डलिता अर्थात खाई से घिरी होने के कारण शत्रु अपने करने में सफल ही नहीं हो सकते थे। राजा नल अपने राज्य में दण्ड व्यवस्था को सम्यक् सञ्चालित करते थे। वे स्वयं मुनी के समान दया पर लज्जित होते हैं–

फलेन मूलेन च वारिभूरुहां मुनिरवेत्थं मम यस्य वृत्तयः।
त्वयाऽद्य तस्मिन्नपि दण्डधारिणा कथं न पत्या धरणी ह्रणीयते।।[20]

अर्थात् मुनि के समान जिस मेरा जीवन–व्यापार कमलों के फलमूल द्वारा चलता है उस मुझ पर तुझ दण्डधारी पति के कारण धरती आज क्यों लज्जित नहीं होती है। यह उक्ति हंश की। उसी के कारण राजा के ह्रदय में दयाभाव का संचार होता है। मन्त्र के सम्बन्ध में 'याज्ञवल्क्यस्मृति' में कहा गया है–

मन्त्रमूलं यतो राज्यं तस्मान्मन्त्रं सुरक्षितम्।
कुर्याद्यथाऽस्य न विदुः कर्मणामा फलोदयात्।।[21]

अर्थात् राज्य मन्त्र, मन्त्रणा (गुप्तविचार) मूलक है। इसलिए मन्त्र को हमेशा गुप्त रखना चाहिए। जब तक फलोदय न हो जाय तब तक राजा मन्त्र का प्रकट न करे। यही बात 'अर्थशास्त्र' में भी कही गयी है–

तस्मान्नास्य परे विद्युः कर्म किञ्चिच्चिकीर्षितम्।
आराब्धारस्तु जानीयुराराब्धं कृतमेव च।।[22]

अर्थात् गुप्त मन्त्रणाओं को राजा के अतिरिक्त कोई न जानने पाये। केवल कार्यारम्भ करने वाले व्यक्ति ही उसके आभास को जान सके और उन्हें उसका परिणाम कार्य की समाप्ति के बाद ही ज्ञात हो। इस

प्रकार श्रीहर्ष ने राज्य के सप्तांगों की भलिभांति व्याख्या की है। राजधर्म में षड्क्षम्पत्तियों का भी अत्यधिक महत्त्व है। जिसे राजा की प्रकृति कहा जाता है। राजा नल भी इन षड्सम्पत्तियों से युक्त थे। षड्सम्पत्तियों के विषय में कहा गया है–

सधिं च विग्रहं यानमासनं संश्रयं तथा।
द्वैधीभावं गुणानेतान् यथावत्परिकल्पयेत्।।[23]

अर्थात् सन्धि, विग्रह, यान, आसन, संश्रय और द्वैधीभाव ये छः राजाओं के गुण हैं। जब जैसा समय हो तदनुसार इनका उपयोग करना चाहिए। वस्तुतः सन्धि द्वारा व्यवस्था होती है। अपकारादि वैरभाव से विग्रह सम्बन्धित है। दूसरे किसी राजा के प्रति चढ़ाई करने को यान कहते हैं। शत्रु अथवा मित्र राजा की उपेक्षा है या किसी कार्य विशेष की प्रतीक्षा आसन कहलाता है। यदि अपने पास पर्याप्त बल सेनादि नहीं है तो किसी वलिष्ट राजा के आश्रय लेने को संश्रय कहते है। अपने बल सेना का विभाग करना अथवा शत्रु राजा की शक्ति में भेद डालना फूट डालना द्वैधीयाव है। इन सबका उपयोग राजा को समयानुकूल करना चाहिए।

राजव्यवस्था के अन्तर्गत स्वयम्बर प्रथा के विषय को भी नैषधीयचरितम् में प्रतिपादित किया गया है। राजा लोग अपनी कन्या के विवाह के लिए स्वयम्बर का आयोजन करते थे। जिसका उल्लेख रामायण, महाभारत इत्यादि में भी मिलता है। स्वयम्बर में वर के रूप, गुण एवं पौरुष के आधार पर कन्या को वर चुनने की स्वतंत्रता थी। उसी रूप में यहाँ भी स्वयम्बर प्रथा को प्रतिपादित किया गया है–

कति पयदिवसैर्वयस्या वः स्वयमभिलक्ष्य वरिष्यते वरीयान्।
क्रशिमरामनयानया तदाप्तुं रुचिरुचिताथ भवद्विधाभिधाभिः।।[24]

अर्थात् राजा ने कहा कुछ दिनों में तुम्हारी सखी दमयन्ती द्वारा अपनी इच्छानुसार अच्छावर वरा जायेगा। अतः संप्रति इस दमयन्ती को आप जैसी सख्यिों के समझाने से कृशता दूर करके कांति प्राप्त करना उचित होगा। राजधर्म में अतिथि सरकार का भी अत्यधिक महत्त्व है। इसी रूप में यहाँ भी कहा गया है–

पार्थिवं हि निजमाजिषु वीरा दूरमूर्ध्वगमनस्य विरोधि।
गौरवाद्वपुरपास्य भजन्ते मत्कृतामतिथि गौरवऋद्धिम्।।[25]

अर्थात् वीर गण पृथ्वी से उत्पन्न अतएव गरुए ऊँचे जाने के अतिशय विरोधी अपने शरीर को संग्राम में त्यागकर मेरे द्वारा किये गये अतिथि समान गौरव–ऐश्वर्य को प्राप्त कर पाते हैं। यानि अतिथि सम्मान का गौरव अधिकाधिक है। सन्देह को यहाँ पाप माना गया है। सन्देह सभी अनिष्ट की मूल भूमि है। कहा गया है–

तद्विमृज्य मम संशयशिल्पि स्फीतमत्र विषये सहसाधम्।
भूयतां भगवतः श्रुतिसारैरद्य वाग्भिरघमर्षणऋग्भिः।।[26]

अर्थात् इस विषय में मेरे संशय के जनक, वृद्धि को प्राप्त पाप को शीघ्र दूर करके आपके वचन वेद का सार अथवा कानों को अमृतमय लगने वाले अघमर्क्षण ऋचाएं बने। अभिप्राय है इन्द्र के मन में भूलोक के राजाओं के विषय में जो संदेह हो गया था वह संशय उसे पाप सम कष्ट प्रदायक लग रहा है। नारद से उसने निवेदन किया कि वे इस विषय में कुछ सूचनाएं देकर उसके सन्देह को दूर करें। सन्देह पाप है और नारद की वाणी पापनाशक ऋचाएं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कवि अपने सम्पूर्ण महाकाव्य में नल–दमयन्ती के व्याज से राजधर्म का उपदेश देने का केवल प्रयास ही नहीं किया है बल्कि उसे व्यवहारोचित भी बनाया है। राजा नल और राजा भीम के राजकीय परिवेश का वर्णन इस भांति किया गया है कि राजधर्म का सद्यः बोध हो जाता है। राजधर्म की भलि–भांति विश्लेषण कर श्रीहर्ष अपने कृति नैषधीयचरितम् के सांस्कृतिक परिवेश का प्रमाण दिये हैं। यहां पर राजा, मन्त्री, राज्य, कोश, दुर्ग, मन्त्र इत्यादि के साथ सन्धि–विग्रह आदि का भी सहज वर्णन किया गया है जिससे बारहवीं शताब्दी का राजनीतिक परिवेश भी समलंकृत हो जाता है।

सन्दर्भ

1. नैषधीयपचरितम्, 1/1
2. मनुस्मृति, 7/14
3. याज्ञवल्क्यस्मृति, आधारध्याय, 13/309–311
4. नैषधीयचरितम्, 1/4
5. अर्थशास्त्र, 1/1/1

6. नैषधीयचरितम्, 1/7
7. वही, 7/34
8. वही, 7/28
9. अर्थशास्त्र, 2/4/5–3
10. नैषधीयचरितम्, 4/116
11. अर्थशास्त्र, 3/7/2
12. नैषधीयचरितम्, 1/61
13. वही, 1/62
14. वही, 1/10
15. वही, 1/8
16. वही, 1/19
17. रघुवंशम्, 1/18
18. याज्ञवल्क्यस्मृति आचाराध्याय, 13/321
19. नैषधीयचरितम्, 2/95
20. वही, 1/133
21. याज्ञवल्क्यस्मृति आचाराध्याय, 13/344
22. अर्थशास्त्र, 10/14/2
23. याज्ञवल्क्यस्मृति आचाराध्याय, 13/347
24. नैषधीयचरितम्, 4/121
25. वही, 5/15
26. वही, 5/18

सहायक–आचार्य, संस्कृत विभाग,
डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय,
सागर (म.प्र.) 470003